आपने लिखा

संदर्भ अंक-79, में रघुनन्दन त्रिवेदी की कहानी 'स्कूल गाथा' पढ़ी। चूँकि प्रतिक्रियाएँ आमंत्रित की गई हैं, इसलिए अपने विचार लिख रही हूँ।

कहानी आरम्भ से अन्त तक पाठक को बाँधे रखने में सक्षम है। लेखक की विशिष्ट शैली मुझे बहुत पसन्द आई।

कहानी में वर्णित घटनाएँ असामान्य प्रतीत नहीं होतीं। 40-50 वर्ष पूर्व तो ऐसी घटनाएँ, स्कूल का माहौल व शिक्षक की छवि भी अस्वाभाविक नहीं लगती। पिछले दो-तीन दशकों में शिक्षा जगत में काफी परिवर्तन आए हैं, किन्तु ऐसी घटनाएँ व स्थितियाँ नहीं होती होंगी - ऐसा नहीं कहा जा सकता। नौटंकी की जगह अब और कई चीज़ें आ गई हैं।

लेखक की रोचक शैली में स्कूल के चौगान व कक्षा का वर्णन अति सजीव है। तमाम चेतावनियों के बावजूद बच्चों की प्रतिक्रियाएँ भी स्वाभाविक प्रतीत होती हैं। कुल मिलाकर कहानी पाठकों, विशेषकर शिक्षकों व अभिभावकों को सोचने के लिए मजबूर करती है। बच्चों के मनोविज्ञान को समझने में भी मदद करती है।

रघुनंदन जी की अन्य कहानियाँ भी संदर्भ में प्रकाशित की जा सकती हैं।

विश्व विजया सिंह
उदयपुर, राजस्थान

संदर्भ का अंक-79 जनवरी-फरवरी, 2012 मिला। जैसे ही पन्ने पलटे गिंजाई के चित्र पर नज़र पड़ी। गिंजाई के चमकते चित्र ने मन मोह लिया। चित्र देखते-देखते सम्बन्धित लेख भी पढ़ना शुरू किया। गिंजाई के विषय में जानकारी रोचकता से प्रस्तुत की गई है।

ऊषा मुकुन्दा ने अपने लेख 'पहाड़ों में एक पुस्तकालय' में स्कूल शिक्षकों को लाइब्रेरी विकसित करने और संचालित करने के आसान टिप्स दिए हैं। 'नन्हे हाथ लिखना सीखने की ओर' में बच्चों में चित्रों के विकास-क्रम को अनुभव से जोड़कर लिखा गया है।

सवालीराम ने - जब हम परमाणुओं को नहीं देख पाते तो फिर वैज्ञानिक उनके बारे में इतना कैसे जानते हैं - का जवाब दिया। उम्मीद है प्रश्नकर्ता सिदि्दका को जवाब पढ़कर सुखद अनुभूति होगी।

रघुनन्दन त्रिवेदी जी की 'स्कूल गाथा' पढ़ी। आपने इस कहानी पर पाठकों की प्रतिक्रिया भी माँगी है। कहानी ने मुझे निःशब्द किया।

सुशील जोशी जी के लेख से रूबरू होने का अवसर मिला। गर्मी और ठण्डक के अहसासों को समेटते हुए लेख को जीवन्त और रोचक बना दिया।

नीलम अरोरा
एस.सी.ई.आर.टी., रायपुर, छत्तीसगढ़

संदर्भ अंक-79 में अपने प्रिय कथाकार स्व. रघुनन्दन त्रिवेदी की 'स्कूलगाथा' पढ़कर खुश हुआ। रघुनन्दन मेरे प्रिय कथाकार ही नहीं, मित्र भी थे। उनका कम उम्र में देहान्त हिन्दी कहानी की क्षति है। मैं उन्हें भारतीय चेखव मानता हूँ क्योंकि छोटे कलेवर में कहानी को जिस कलात्मकता से उन्होंने साजा, वह विरल है। उन्हें किसी विचारधारा ने आक्रान्त नहीं किया। बहरहाल, 'स्कूलगाथा' के नीचे लिखी आपकी सम्पादकीय कशमकश ने मुझे उकसाया कि आपको एक उम्दा कहानी छापने के लिए साधुवाद दूँ। जैसा आपने अपने संशय

में इंगित किया है, किसी स्कूली जीवन का यथार्थ वही नहीं है जैसा कहानी हँसी-हँसी में ही दर्ज कर जाती है। नौटंकी तो एक कथा प्रविधि है। असल बात है उस दोहरी मानसिकता को रेखांकित करने की जो हमारे शिक्षकों का हक बन गई है। कहानी बेशक गई सदी के सातवें दशक की है लेकिन इसमें पैवस्त मुद्दा समकालीन है जो शायद दुर्भाग्य से आगे भी बना रहेगा। आपने स्टीफन स्वाइग की मेरे द्वारा हिन्दी में अनुदित आत्मकथा के 'स्कूल के दिन' वाले अध्याय का जो अंश 'संदर्भ' में साल भर पहले प्रकाशित किया था, क्या इन दोनों में तालमेल नहीं दिखता है? देश-काल बदलने से भी कुछ सत्यों की विभीषिका नहीं बदलती है। बच्चों के प्रति चाहे माँ-बाप हों या अध्यापक, सनातन से दोगलेपन का बर्ताव करते रहे हैं। अपने लिए कुछ मानदण्ड, उनके लिए दूसरे। मैं तो इसे उपनिवेशी मानसिकता कहने से भी हिचकता हूँ क्योंकि इसका दायरा उसे भी चीरता जाता है। मुझे अपनी बेटी के स्कूल के एक बोर्ड पर लिखी इबारत याद आती है - चिन्ता की बात यह नहीं है कि बच्चे आपकी नहीं सुनते हैं, चिन्ता की बात यह है कि बच्चे आपको देखते हैं। उस देखने को नियंत्रित करने के लिए ही तो उन पर धौंस जमानी होती है, उन्हें दोयम ठहराना होता है।

यह सच है कि किसी स्कूली कक्षा में पढ़ाए जाने पर यह कहानी ज़ाहिर असहजता पैदा करेगी। लेकिन शिक्षकों की दोगली मानसिकता को रेखांकित करती कहानी पूरे पाठ्यक्रम में बच्चे का विश्वास बढ़ाएगी क्योंकि उसे यह अपने करीब लगेगी। पीढ़ियों के बीच एक गैप हमेशा रहा है लेकिन अब यह खतरनाक और न पट सकने की स्थिति तक बढ़ गया है क्योंकि तकनीक ने नई तरह की उलझनें, चेतना और जटिलता पैदा कर दी हैं। अपनी कमज़ोरियों को छिपाकर हम इस पीढ़ी से नहीं बच सकते हैं इसलिए उनके स्वीकार्य में भलाई है। शायद तब हम उनके निदान की तरफ सोचें, बजाय दुराव-छिपाव के जैसा अभी तक आदतन करते रहे हैं।

ओमा शर्मा
मुम्बई, महाराष्ट्र

कॉलेज में अंक 80 व 81 प्राप्त हुए। इसमें प्रो. कृष्णकुमार ने शिक्षा व बाल साहित्य पर जो बातें कहीं हैं वे बहुत महत्वपूर्ण हैं। उन्होंने विभिन्न उदाहरणों के माध्यम से बाल साहित्य की वर्तमान स्थिति की जो समीक्षा की वो काबिले तारीफ है।

जब से 'संदर्भ' को जाना है तब से 'संदर्भ' मेरे लिए आवश्यक हो गई है। इसमें प्रकाशित लेख मेरे सोचने व मनन शक्ति को बढ़ाते हैं। अंक-81 में श्री कालू राम शर्मा द्वारा कानखजूरा के बारे में जो जानकारी प्रस्तुत की गई है वो बहुत ही ज्ञानवर्धक है। इस लेख का उपयोग मैंने अपने छात्राध्यापकों के मार्गदर्शन के लिए किया।

विनोद कुमार सुथार, वरिष्ठ व्याख्याता
कानोड, राजस्थान

शैक्षणिक संदर्भ अंक-81 में 'मौत क्या है' शीर्षक के अन्तर्गत लेखिका के अनुभव पढ़कर मुझे 35 वर्ष पहले की एक घटना याद आ गई। फर्क इतना है कि उस घटना में बच्चे की प्रतिक्रिया एकदम भिन्न - अनपेक्षित - थी और मेरी स्थिति किसी गुनाहगार के समान हो गई थी।

उस समय मैं रीवा में पदस्थ थी। मेरे साथ साढ़े तीन वर्ष का मेरा भानजा रहता था। वह कहानियाँ सुनने का बहुत शौकीन था और उसकी याददाश्त बहुत अच्छी थी। उसकी देखरेख के लिए शान्ति नाम की

एक लड़की रखी थी। कभी शान्ति आती थी, कभी उसकी नानी आ जाती थी। एक बार लगातार चार दिनों तक वे अनुपस्थित रहीं। पाँचवें दिन शान्ति ने आकर सूचना दी कि उसकी नानी मर गई है इसलिए अब वह काम पर नहीं आएँगी। शान्ति के जाने के बाद भानजे से संवाद कुछ इस तरह हुआ।

- "मौसी, शान्ति क्या कह रही थी?"
- "वह कह रही थी कि उसकी नानी मर गई।" मैंने बताया।
- "मर गई मतलब क्या?"
- "वह बूढ़ी हो गई थी, बूढ़े लोग एक दिन मर जाते हैं।"
- "बूढ़े कैसे होते है? बूढ़े मतलब क्या?"
- "देखो, बच्चा छोटा होता है। धीरे-धीरे बड़ा होकर जवान होता है, फिर और बड़ा होता है तब उसके बाल सफेद हो जाते हैं, शरीर कमज़ोर हो जाता है, दाँत गिर जाते हैं, शरीर पर झुर्रियाँ पड़ जाती हैं, तब वह बूढ़ा हो जाता है।"
- "फिर क्या होता है?"
- "फिर एक दिन उसकी साँस रुक जाती है। वह मर जाता है।"
- "फिर क्या होता है?"
- "फिर वह देख नहीं सकता, बोल नहीं सकता, खाना नहीं खा सकता, चल नहीं सकता। उसका शरीर लकड़ी जैसा हो जाता है। फिर उसको सफेद चादर से ढक देते हैं, बाँस की टिकठी पर लिटाकर शहर से दूर ले जाते हैं और लकड़ी के ढेर पर रखकर जला देते हैं। उसकी राख बन जाती है और मिट्टी में मिल जाती है।

इसके बाद बच्चे ने कोई सवाल नहीं पूछा। शायद वह समझ गया था कि शान्ति की नानी अब इस दुनिया में नहीं रहीं। मैंने भी राहत की साँस ली और सोचा कि बात अब खत्म हो गई है, लेकिन ऐसा नहीं था। नाटक का अगला भाग अभी शेष था।

10-15 दिन बाद बच्चे के पिता उससे मिलने आए थे। बच्चा उनके कन्धों पर चढ़कर मस्ती कर रहा था। तभी उसकी नज़र पिता के सिर पर चमक रहे 2-3 सफेद बालों पर पड़ गई। वह खुशी के मारे उछल पड़ा और बोला, "पापा! तुम्हारे बाल सफेद हो गए हैं, अब तुम बूढ़े हो जाओगे, कमज़ोर हो जाओगे, तुम्हारी साँस रुक जाएगी और तुम मर जाओगे। फिर मैं तुमको उठाकर दूर ले जाऊँगा और जला दूँगा।" पिता गुस्से से तमतमा गए, "यह सब तुम्हें किसने सिखाया है?" ऐसा कहकर बच्चे के गाल पर एक तमाचा जड़ दिया।

मैंने उन्हें समझाने की कोशिश की कि बच्चे की इसमें कोई गलती नहीं है। पूरा किस्सा सुनाया लेकिन उनकी नाराज़गी बनी रही।

यहाँ भी सवाल वही उठता है कि गलती किसकी थी।

सुधा हर्डीकर,
होशंगाबाद, म.प्र.

भूल-सुधार

संदर्भ अंक 81 में प्रकाशित कृष्णकुमार के व्याख्यान 'बचपन की अवधारणा और बाल साहित्य' के पृष्ठ 71 पर एक उपन्यास का नाम भूलवश 'एक घर, पाँच निघर' दे दिया गया था। इस उपन्यास का सही नाम है 'एक डर, पाँच निडर'। इस भूल के लिए हमें खेद है।

– सम्पादक समूह